सामाजिक विभेद को स्थापित करती पाठ्यपुस्तकें

डॉ. राजीव गुप्ता

यह लेख राजस्थान में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत समानान्तर पाठ्यपुस्तकों के बारे में है। डॉ. राजीव गुप्ता ने राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों का जोया हसन समिति के लिए विश्लेषण किया है। राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों पर राज्य स्तरीय सम्मेलन में यह वक्तव्य दिया गया है।

लेखक परिचय :

सह-प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, वर्तमान में यू.जी.सी. रिसर्च अवार्ड के अन्तर्गत पाठ्यपुस्तकों का समाजशास्त्र : संस्कृति एवं ज्ञान परिप्रेक्ष्य के रूप में, क्षेत्र में कार्यरत

सम्पर्क :

109, मोहन नगर,
गोपालपुरा बाईपास,
जयपुर

बहुत सी चीजें रोहित और विनोद जी ने बता दीं हैं। मैं केवल इसमें कुछ पक्ष और जोड़ना चाहूंगा, साथ ही इस संदर्भ में कुछ पुस्तकों के उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूंगा। पर पहले कुछ बात हम आलोचनात्मक और अकादमिक किस्म की कर लें। एक तो यह देखने की कोशिश हम करें कि भारतीय समाज में 'वर्चस्व का शिक्षाशास्त्र' क्या है ? और 'उत्पीड़न का शिक्षाशास्त्र' क्या है ? क्या इन दोनों के बीच में कहीं कोई विभाजन रेखा हमको नजर आती है ? या उसे निर्मित करने की एक व्यवस्थित एवं वैध कोशिश की जा रही है ? मुझे लगता है कि कई परिवर्तनों के बावजूद अभी हम अपने आप को 'वर्चस्व के शिक्षाशास्त्र' से मुक्त नहीं कर पाए हैं। राज्य ने वर्चस्व के शिक्षाशास्त्र को संस्थागत आधार दिया है। सरकार एवं प्रभावशाली समूहों ने इस शिक्षाशास्त्र को निरन्तरता दी है। विभिन्न पुस्तकों में सम्मिलित पाठ, पाठ की भाषाई संरचना एवं शिक्षकों द्वारा इसे संचारित करने की विधा वर्चस्व के इस शिक्षाशास्त्र के कुछ अवयव हैं। इन सारी पुस्तकों का मूल्यांकन करते समय एक दूसरा सवाल यह भी उठना चाहिए कि इन पुस्तकों के लेखक कौन हैं ? लेखक में लेखकीय विधा बहुत जरूरी है। लेखकीय विधा की उपेक्षा कर लिखी गई किताबें परीक्षाओं में सफलता तो दिला सकती हैं पर चेतना का विस्तार नहीं कर सकतीं। अधिकांश राज्यों में जो किताबें लिखी गई हैं उनको अगर हम कहीं विचारधारा के नजरिए से जोडें तो यह कह सकते हैं कि ये बुद्धिजीवियों की रचना नहीं हैं। इनको 'सावयवी बुद्धिजीवियों' ने तो नहीं लिखा। शासन में प्रभावी राजनैतिक दलों ने 'पिक एण्ड चूज' के आधार पर लेखकों को चुना और उनसे कहा कि पुस्तक लिख दी जाए। लेखक कौनसे चुने गए इससे यह भी पता चल गया कि इन पुस्तकों में क्या लिखा जाएगा। राजस्थान इसका उदाहरण है।

आज के दौर में पुस्तकें समाचार पत्र की भांति चेतना को विकसित करने का एक अत्यंत प्रभावशाली लेकिन धीमा तरीका है। एक दूसरा त्वरित तरीका है जो मिडिया के रूप में, आडियो-विडियो के रूप में, हमारे सामने आता है। लेकिन पुस्तक जिस मैसेज को देती है वह मैसेज धीमा होते हुए भी शक्तिशाली है। आज भी हम अपने अधिकांश विद्यार्थियों को देखते हैं कि अगर उनसे पुस्तक जमीन पर गिरती है तो वे उसको माथे से लगाते हैं और कहते हैं कि हम से पाप हो गया, भगवान हमको माफ करे। पुस्तक का यह पवित्र रूप उसकी चेतना में मौजूद है। घर में आज भी माता-पिता से जब बच्चा पुस्तकों में लिखे हुए कुछ सवालों को पूछता है तो उसको डांटकर यह कहा जाता है कि, 'तू खुद पढ़ ले या जाकर कर अपने शिक्षक से पूछ लेना। शिक्षक आज भी विद्यार्थी एवं अभिभावकों के लिए 'ज्ञान के विश्व'

में निर्णायक है। उसका बताया गया उत्तर ही सच है। माता-पिता उसका उत्तर नहीं देंगे। दूसरे रूप में यह कहा जा सकता है कि पुस्तकों का परिवार के परिवेश के साथ कोई संबंध नहीं है। क्योंकि परिवार ने यह सोच लिया है कि ये पुस्तकें उसके स्पेस का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। और इस कारण परिवार अलग है और राज्य अलग है यहां तक कि दोनों में साफ अन्तर्विरोध हैं। यह कहा जा सकता है कि औपचारिक परिवेश और अनौपचारिक परिवेश के बीच में पुस्तक कहीं खो गई है। पुस्तकें उन लेखकों के द्वारा लिखवाई जा रही हैं जो लोग औपचारिक परिवेश में अनौपचारिक परिवेश की अंध आस्था को किसी न किसी रूप में स्थापित करने के इच्छुक हैं। वे चाहते ही नहीं कि लोकतंत्र का स्वरूप विकासात्मक हो। उनके लिए लोकतंत्र महज एक ठहराव की राजनीति है। एक ऐसे ठहराव की राजनीति जिसमें जो कुछ उनके पास है सदैव उनके आधिपत्य में रहे। हां, कभी-कभी जब आंदोलन होते हैं तो कुछ छोटे-मोटे लाभ उन लोगों को दे दिए जाएं, जो उत्पीड़न का शिकार हैं ताकि सरकार के लोकतांत्रिक चेहरे का मिथक एक विश्वास के रूप में बना रहे। लोकतंत्र की इस विसंगति को ये लेखक बहुत आसानी से पुस्तकों और मीडिया के माध्यम से स्थापित करते हैं। इसलिए ये पुस्तकें विसंगति मूलक मानसिकता का भाग हैं। ये दोनों सवाल मैं उन आम नागरिकों की तरफ से कर रहा हूं जो पुस्तकों का मूल्यांकन नहीं करते। मैं 'मानसिकता की किताब' का प्रश्न बड़े गंभीर तरीके से उठा रहा हूं क्योंकि जब जोया हसन कमेटी के सामने राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों को और समानान्तर पुस्तकों को, मूल्यांकित किया गया तब जो कुछ मिला वह बहुत चौंकाने वाला था। केवल सरकारी विद्यालय ऐसा कर रहे हों ऐसा नहीं है। वे विद्यालय जो कि 'एलिट' कहे जाते हैं उनमें पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में भी मूल्य शिक्षा या नैतिक शिक्षा के नाम पर जो कुछ पढ़ाया जाता है, उसमें जिस तरह की सूचनाएं संप्रेषित हुईं, उससे ऐसा लगा कि ये पुस्तकें धर्मान्धता केन्द्रित विभाजन एवं विद्वेष उत्पन्न करती है। एलीट' स्कूलों एवं 'सरकारी' स्कूलों में बच्चों को धर्मान्धता एवं विद्वेष सिखाकर 'एक्सक्लूजन' को स्थापित कर दिया गया है। दोनों स्तरों पर विद्यार्थी को सांप्रदायिक बनाने की कोशिश है। 'एलीट' स्कूल का विद्यार्थी विकास प्रक्रिया में दलित, आदिवासी एवं अल्पसंख्यकों की उपेक्षा करेगा वहीं सरकारी स्कूल का विद्यार्थी सस्ते श्रम में वंचित को पृथक करने की कोशिश करेगा। वे भी उतने ही अंधविश्वासी हों या अंधविश्वासी बनें जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम करें और वे भी उतने अंधविश्वासी बने जो सस्ते श्रम से जुड़े हों। हां, इतना जरूर है कि एक अंधविश्वासी जो 'एलिट स्कूल' के अंदर शिक्षा प्राप्त करके आगे बढ़ेगा, सांप्रदायिकता का नेतृत्व तो कर सकता है, उसे विचार तो दे सकता है लेकिन सांप्रदायिकता की क्रियाओं में उसकी अपनी साझेदारी नहीं होगी। साझेदारी जिस मध्य वर्ग की और निम्न वर्ग की होगी वे ऐसी सामाजिक इकाइयां होगी जिनका व्यक्तित्व विभाजन मूलक हो, सांप्रदायिक हो। और चूंकि उन सबके पास में रोजगार नहीं है लिहाजा उन्हें बड़ी आसानी से इन सारी घटनाओं में सहभागी बनाया जा सके।

मैं विस्तार में नहीं जा रहा क्योंकि बहुत से सैद्धान्तिक सवाल हमारे दोनों साथियों ने उठा दिए हैं। मैं अब कुछ सामाजिक पक्षों की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करूंगा। और यह ध्यान मैं इस तथ्य के साथ आकर्षित कर रहा हूं, कि भारतीय समाज का पूरा का पूरा अनौपचारिक ढांचा जाति, धर्म, नातेदारी की संस्थाओं के साथ मिलकर बना है और इनके साथ (संयुक्त) परिवार भी शामिल हैं। इस स्पेस को ये पुस्तकें कैसे प्रस्तुत करती हैं ? क्योंकि ये संस्थाएं व्यक्तित्व निर्माण की बुनियाद भी हैं। जैसे-जैसे ये बच्चे आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे इनके व्यक्तित्व में अनेक अन्य पक्ष शामिल होंगे ? एक पक्ष पर और ध्यान देने की जरूरत है, रोहित ने भी इस बात को कहा है। हम अन्तःक्रियात्मक शिक्षाशास्त्र ले तो आए हैं और एनसीईआरटी की पुस्तकों के अंदर ला भी रहे हैं। लेकिन जब तक परीक्षा प्रणाली में कोई गुणात्मक बदलाव न हो, तब तक ये पुस्तकें एक मायने में धार्मिक ग्रंथ ही बनी रहेंगी। क्योंकि जो सवाल पूछा जाएगा उस सवाल का उत्तर विद्यार्थी को उन्हीं स्वीकृत पाठ्यपुस्तकों में से देना है। अब एनसीईआरटी में परीक्षा प्रणाली परिवर्तित हो रही है लेकिन राज्य सरकारें अभी गैर अन्तः क्रियात्मक परीक्षा प्रणाली पर काम कर रही हैं।

मैं आपके सामने कुछ सवाल उठा रहा हूं, ये सवाल मैं उन पुस्तकों से उठा रहा हूं जो ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में पढ़ाई जाती हैं, जिसका मूल्यांकन मेरे द्वारा जोया हसन कमेटी के लिए किया गया है और ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाएं कोई छोटी-मोटी कक्षाएं नहीं हैं। क्योंकि वहां से बच्चा अपने करियर बनाने की प्रक्रिया में गहराई से सक्रिय होने की कोशिश करता है। और वहीं पर उसको यह भी तय करना होता है कि वह किस दिशा में जाना चाहता है। तो ये पुस्तकें आपको किस दिशा की तरफ ले जा रही हैं ? कुछ सवाल तो मेरे दोनों साथियों ने दस्तावेजी स्वरूप के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में प्रस्तुत किए हैं, मैं कुछ पुस्तकों के उद्धरणों के हवाले से उनको व्यापक रूप में आपके सामने प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहा हूं और फिर मैं सवाल करूंगा कि इन सब चीजों के साथ क्या किए जाने की आवश्यकता है ?

एम. एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा की कक्षा 11 की समाजशास्त्र (द्वितीय) की पुस्तक में, ''वर्णाश्रम, कर्म, पुर्नजन्म, पुरुषार्थ, ऋण, यज्ञ, संस्कार व जाति को भारतीय समाज एवं संस्कृति की संरचनात्मक

विशेषताएं बताया है।'' यानी भारतीय समाज का समूचा ढांचा इनसे मिलकर के बना है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यहां जिस तरह की शब्दावली लाई गई है, यह शब्दावली भारतीय समाज की नहीं है। यह उस 'ठहराव मूलक हिन्दू समाज' की है जिसको अभी रोहित 'अतीतोन्मुखी' शब्द के साथ बताने की कोशिश कर रहे थे। यही वो अतीत है जिसकी तरफ आप जा रहे हैं। पुस्तक में आगे लिखा है, ''भारत विभाजन में मुसलमानों के विशिष्ट योग के कारण ही उन्हें शंका की दृष्टि से देखा जाता है। यही नहीं स्वयं मुसलमानों ने भी अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखने का प्रयास किया है। हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म में टकराव उस समय प्रारंभ हुआ जब मुसलमान आक्रमणकारी के रूप में यहां आए और उन्होंने यहां के मूल निवासियों को जबरन मुसलमान बनाया। ऐसी दशा में सामाजिक व्यवस्थाओं को इस प्रकार संगठित करना आवश्यक था। कि रक्त की शुद्धता बनी रहे। अतः वर्ण व्यवस्था के माध्यम से विभिन्न प्रजातीय समूहों को रक्त की शुद्धता को बनाए रखने का अवसर मिला।'' जाति और वर्ण व्यवस्था को पवित्रता के साथ ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों में स्थापित करने की यह हिन्दुत्ववादी मानसिकता की कोशिश है और इसमें कोई आलोचनात्मक सवाल भी नहीं हैं। संबंधित प्रश्न इस संदर्भ के साथ पूछे जाएंगे और इन्हीं के आधार पर विद्यार्थी को उत्तर देने होंगे। इस पुस्तक में कुछ विचार ऐसे भी हैं जो उन संस्थाओं को वैधता प्रदान करते हैं जिन्हें प्रतिमान विरोधी एवं समानता विरोधी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, ''बहुपत्नी विवाह के कारण या बहुपत्नीत्व के कारण कामी पुरुषों की यौन इच्छांए परिवार में पूरी हो जाती हैं। अतः समाज में भ्रष्टाचार और अनैतिकता की वृद्धि नहीं हो पाती है। बच्चों का पालन-पोषण, घर की देखरेख की सरलता, परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की सुगम पूर्ति बहुपत्नी विवाह के लाभ हैं। बहुपत्नी विवाह समाज के अधिकांशतः धनी एवं समृद्ध लोगों में पाए जाते हैं। अतः ऐसे विवाह से उत्पन्न संतानें शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से उत्तम होती हैं।'' स्पष्ट है कि इस उदाहरण के द्वारा नस्लवाद का सांस्कृतिक स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत किया गया। अन्य उदाहरण लें, ''बहुपत्नी विवाह आदर्श परिवार का निर्माण करता है। यह जनसंख्या वृद्धि को रोकने में सहायक होता है। अंतः विवाह मुसलमानों के आक्रमण का एक परिणाम रहा है। निम्न कुल की लड़कियों का देर तक विवाह न होने पर समाज में भ्रष्टाचार एवं नैतिक पतन होने की समस्याएं पैदा होती हैं।'' बाल विवाह को विधि सम्मत ठहराने का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। एक विवाह का दोष बताते हुए लेखकों का मत है कि यह ''यौनिक अनैतिकता में वृद्धि करता है। अतिरिक्त यौन संबंधों को स्थापित करने का अवसर देता है। यौन अपराधों में वृद्धि होती है क्योंकि यौन संबंधी छूट का अभाव एक विवाह के अंदर है और इससे स्त्रियों का शोषण होता है। एक जाति के व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह करते हैं इससे रक्त की शुद्धता बनी रहती है और अन्य जातियों के रक्त दोष उनमें नहीं आ पाते हैं।'' इस पुस्तक में बाल विवाह के लाभ के निम्नलिखित उल्लेख हैं : -

''कम आयु में विवाह होने पर पति-पत्नी में अनुकूलनशीलता सरल हो जाती है। अतः वैवाहिक जीवन आनन्दपूर्ण हो जाता है। और नैतिक पतन नहीं हो पाता। दहेज के अभाव में लड़कियों का देर तक विवाह नहीं होने पर कुछ लड़कियां अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति अनैतिक तरीके से करती हैं और इससे भ्रष्टाचार बढ़ता है।'' पुस्तक में दहेज के कुछ लाभ बताए गए हैं, जो दहेज के विरोध को बेमानी बना देते हैं। ''दहेज से नव-दम्पत्ति को घर बसाने में सहायता मिलती है। दहेज से परिवार में स्त्री का मान बढ़ता है। उसे सास-ससुर एवं पति का प्रेम मिलता है तथा परिवार के सदस्यों का कोपभाजन नहीं होना पड़ता।'' विवाह, परिवार, नातेदारी, जाति किन-किन माध्यमों से संगठित हो सकती है, से सम्बद्ध यह चिन्तन बिना किसी प्रकार के विवाद के इन पुस्तकों के अंदर प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में अनुसूचित जातियों के कल्याण कार्यक्रम पर लेखकों का तर्क है कि, ''सरकारी नौकरियों में इन्हें जहां आरक्षण के कारण पदोन्नति के अवसर मिले हैं वही विधिक सेवाओं एवं सरकारी कामकाज में कुशलता में कुछ कमी आई है।'' अनुसूचित जातियों की कार्य शैली पर यह टिप्पणी एक सीमा तक अपमान जनक है।

अनुसूचित जाति के सवाल अब संविधान के साथ जुड़ गए हैं। मैं उन सब पक्षों पर नहीं जा रहा हूं जो पुस्तक में हैं और जिन्हें आमतौर पर हमारी बुद्धि नहीं स्वीकारती। मैंने पूर्व में कहा कि अनौपचारिक स्पेस और औपचारिक स्पेस के बीच में किताब कहां पर खड़ी है, इसको समझने की जरूरत है। पुस्तक में कहा गया है कि अनुसूचित जाति में अपनी प्रस्थितियों के संबंध में चेतना उत्पन्न हुई है। उनमें उच्च जातियों के प्रति विरोधी रुख भी पनपा है। परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों में उच्च जातियों के प्रति वैमनस्य का भाव आया है और उनके प्रति आक्रामक रुख उत्पन्न हुआ है।'' यानी लेखकों के अनुसार अब अनुसूचित जातियां अन्य जातियों के साथ संघर्ष करने पर पूरी तरह आमादा हैं।

स्त्रियों एवं अन्य पक्षों पर भी यह पुस्तक संकेत देती हैं कि ''मनोरंजन के साधनों का अभाव होने के कारण निम्न वर्ग के लोगों एवं ग्रामीणों में स्त्री ही मनोरंजन का साधन समझी जाती है। चलचित्रों, अश्लील साहित्य, तड़क-भड़क, चुस्त पोशाक ने यौन उत्तेजना को लोगों के बीच उत्पन्न किया है।'' स्त्री के अपमान

का यह पक्ष विद्यार्थी की चेतना में क्या परिणाम उत्पन्न करेगा, सोचा जा सकता है। अब हम दूसरी पुस्तक पर आ जाएं। 'जिसे कक्षा 11 की पुस्तक के रूप में वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा ने लिखा है। 'मदिरा के व्यापार में पारसियों की बहुत अहम भूमिका है।'' भाषावाद पर लिखा गया है, ''हिन्दी विरोधी आन्दोलन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्तरी भारत के हिन्दी भाषी प्रान्तों में आंदोलन हुए और उन्होंने अंग्रेजी के विरोध में वैसा ही प्रदर्शन किया।'' आगे ये लेखक अपने दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। ''इस प्रकार इन अंग्रेजी समर्थकों को न केवल हिन्दी विरोधी कहा जाना चाहिए बल्कि ये तो राष्ट्र विरोधी हैं।''

पुस्तकें कक्षा ग्यारहवीं और बारहवीं के लिए हैं इसमें बहुत सारे जाति के प्रकार्यों की चर्चा है जैसे जाति ने भारतीय समाज की राजनीति को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, ''यदि भारत में जाति प्रथा न होती तो भारतवर्ष ईसाई धर्माबलंबी ब्रिटिश राज्य का अंग बन गया होता। जाति प्रथा ने अन्तः विवाह की नीति को महत्त्व दिया है तथा बहिर गोत्र के साथ विवाह पर प्रतिबंध लगाया है जिससे पवित्रता बनी रहती है तथा एक जाति की संतानों में अपने पूर्वजों का रक्त निरंतर बहता रहता है।''

मैंने इन समानान्तर पुस्तकों के उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत किए हैं जो माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की मान्यता से सरकारी स्कूलों में पढ़ाई जा रही हैं। कुछ अन्य समानान्तर पुस्तकें, जो विद्या आश्रम स्कूल एवं डीएवी के मॉडल स्कूल्स में पढ़ाई जाती हैं या आदर्श विद्या मंदिर में पढ़ाई जाती हैं। ये समस्त पुस्तकें अंध आस्था, संकीर्णतावाद, मिथक को यथार्थ बनाना, हिन्दुत्व ही भारतीय है, लैंगिक भेदभाव को बच्चों में संचारित करती हैं। उन पुस्तकों में क्या कुछ है, यह सब इस लेखक ने जोया हसन कमेटी के सम्मुख प्रस्तुत किया है। जोया हसन कमेटी की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप जब इन पक्षों सहित अन्य अनेक पक्षों पर चर्चा हुई तो इन्हें कैसे नियंत्रित किया जाए इसके लिए एक समिति मानव संसाधन विकास मंत्रालय बना रहा है।

जो मैंने पहले कहा था उसी के साथ कुछ जोड़कर मैं अपनी बात खत्म कर रहा हूं। क्या पाठ्यपुस्तक माता-पिता या परिवारिक जीवन और औपचारिक स्पेस के बीच में एक ऐसा विभाजन है जहां यह कह दिया जाए कि इन पुस्तकों में जो कुछ लिखा हुआ है वही सच है और माता-पिता से सवाल पूछने पर बच्चे को यह कह दें कि यह उत्तर सिर्फ शिक्षक देंगे। यह मतारोपण किस प्रकार के व्यक्तित्व को उत्पन्न कर रहा है ? इसे उस संकीर्णतावादी राजनीति के साथ जोड़कर के देखें जिसने इस देश के अंदर सामाजिक-सांस्कृतिक विभाजन को वैध स्वरूप दिया है और वैधता धीरे-धीरे एक ऐसे विभाजित प्रजातांत्रिक रूप को उत्पन्न करती चली जा रही है जिसका अंत कहां जा कर के होगा, इस पर गंभीरता से विचार किया जाए।

केवल एक मांग हम इस स्तर पर कर सकते हैं। पुस्तकों का लेखन लेखकों की टीम के द्वारा हो। यह पक्ष सुनिश्चित हो कि पुस्तकों की लेखन की प्रणाली क्या हो ? यह भी सुनिश्चित हो कि एनसीईआरटी ने जो तरीका अपनाया है उसी तरीके से किसी प्रान्त में पाठ्यक्रम बनना चाहिए और पुस्तकें लिखी जानी चाहिएं और उनकी जवाबदेही सुनिश्चित होनी चाहिए। संविधान के किसी भी मूल्य के विपरीत यदि किसी भी पुस्तक में कोई भी चीज समाविष्ट होती है तो सरकार एवं जन संगठनों का दायित्व है कि लेखकीय दायित्व सुनिश्चित हो क्योंकि बारहवीं कक्षा तक जहां परीक्षा वस्तु परक एवं पुस्तक केन्द्रित है। लखकों के लिए लोकतांत्रिक एवं जनमत केन्द्रित दण्ड का कोई स्वरूप होना चाहिए जो प्रभावी हो ताकि कम से कम किसी एक पीढ़ी को सांस्कृतिक दृष्टि से समाप्त तो नहीं कर पाए। हमें भारतीय समाज के इस यथार्थ को शिक्षा के माध्यम से स्थापित करने की आवश्यकता है कि साझा सांस्कृतिक विरासत, धर्म निरपेक्षता, सहिष्णुता, सामाजिक न्याय, समानता एवं लोकतांत्रिक प्रणाली के बिना भारत का अस्तित्व बना नहीं रह सकता। इन मूल्यों एवं प्रणालियों को कुछ राजनीतिक दल, शासक वर्ग एवं नव्य उदारवादी ताकतें पसन्द नहीं करतीं। बच्चों, महिलाओं, विधार्थियों एवं निम्न वर्गों को इसलिए 'टारगेट' बनाया जाता है ताकि भय एवं असुरक्षा का मनोविज्ञान इन श्रेणियों में स्थापित हो जाए और प्रभुत्त्वशाली ताकतें अपने वर्चस्व को लगातार बनाए रखें। इस लेख में उल्लेखित पुस्तकें भय, असुरक्षा एवं आक्रामकता को विद्यार्थी के चिन्तन का भाग बना देती हैं और राष्ट्रवाद के धार्मिक-सांस्कृतिक स्वरूप वाले संकीर्ण विचार को उभारती हैं। धर्म, युद्ध एवं हिंसा के बाजारवाद को इससे प्रोत्साहन मिलता है और गरीबी, बेकारी, स्वास्थ्य-समस्या, अशिक्षा, लैंगिक शोषण एवं असमान विकास के सवाल 'हाशिए' पर चले जाते हैं। शिक्षा इस कारण वांछनीय परिवर्तन का कारक नहीं बन पाती। इन पुस्तकों को पढ़कर विद्यार्थी पुनरुत्थनवाद का समर्थक बन सकता है और 'सजग नागरिक' बनाने का शिक्षा का उद्देश्य विफल हो जाता है। 'सामूहिक' का संकीर्णता मूलक अर्थ प्रभावी हो जाता है और 'अन्तः निर्भर सामूहिकता' के लोकतांत्रिक विचार को त्याग दिया जाता है। आवश्यकता इस प्रयास की है कि पुस्तकों का अनवरत मूल्यांकन हो और शिक्षक, विद्यार्थी एवं अभिभावक व अन्य सजग समूह प्रत्येक पुस्तक की भाषाई, ज्ञान एवं संस्कृति केन्द्रित 'ऑडिटिंग' करें और व्यवस्था के प्रत्येक पक्ष को सवालों के घेरे में लाएं । ◆